वाचनाचार्य सुधाकलश कृत 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' जैन ग्रन्थ में संगीत वैशिष्ट्य एवं प्रासंगिकता

कु० ज्योति गुप्ता
शोधकर्त्री, संगीत विभाग,
दयालबाग एजूकेशनल इन्स्ट्रीटूट,
दयालबाग, आगरा

वाचनाचार्य सुधाकलश कृत 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रन्थ स्वयं में वैशिष्ट्य पूर्ण ग्रन्थ है। यह जैन ग्रंथ १४वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध का है। जो संस्कृत भाषा में लिखित है। आचार्य सुधाकलश द्वारा वर्णित उक्त ग्रंथ में तत्कालीन भारत के पश्चिमी प्रान्त में प्रचलित संगीत शास्त्र विषयक समस्त बिन्दुओं की विशद् जानकारी प्राप्त होती है। मध्यकालीन समय में पश्चिम भारत के गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान और मध्यप्रदेश आदि प्रान्तो में जैन साधुओं द्वारा साहित्य, दर्शन, कला और संगीत के क्षेत्र में बहुत कार्य किये गये। इसी तारतम्यता में जैन आचार्य सुधाकलश द्वारा रचित यह ग्रंथ मध्यकालीन भारत के पश्चिमी प्रान्त की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हुए धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य के साथ ही संगीत की तीनों धाराओं को अपने में समेटे हुए अनुठा संगम है।

मूलतः यह ग्रन्थ जैन दर्शन से प्रभावित है जो कि जैनियों की श्वेताम्वर परम्परा से सम्बधित है। आचार्य सुधाकलश जी एक जैन आचार्य थे। धार्मिक रूप से जैन आचार्य होते हुए भी उन्होंने संगीत के क्षेत्र में महती भूमिका निभाते हुए 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रन्थ का प्रतिपादन किया।

'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रन्थ उस समय में रचित किया गया, जिस समय गुजरात की सांस्कृतिक परम्पराओं को स्थानीय भाषा के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों का सामना करना पड़ रहा था। किन्तु आचार्य सुधाकलश जी ने अपने प्रयासों के द्वारा गुजरात में प्रचलित संस्कृति, सभ्यता व संगीत को अक्षुण्य रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया और उसी का प्रतिफल 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध है।

आचार्य सुधाकलश जी की गुरू-शिष्य परम्परा :-

आचार्य सुधाकलश भी एक महान दार्शनिक एवं शास्त्रज्ञ थे। वाद-विवाद पटुता और तर्क शास्त्र में पारंगतता के कारण उन्हें 'वाचनाचार्या' की उपाधि प्रदान की गई थी। आचार्य सुधाकलश जी श्वेताम्वर संप्रदाय के सिरमौर श्री हर्षपुरिया गच्छ जी की परम्परा से सम्बन्धित थे। इसी गच्छ परम्परा में अभयदेव सूरी, पद्मदेव सूरी व श्री राजशेखर सूरी हुए। श्री राजशेखर सूरी जी आचार्य सुधा कलश जी के गुरू थे। इनके अतिरिक्त श्री पद्मादेव सूरी के शिष्य श्री तिलक जी का उल्लेख भी आचार्य सुधाकलश जी के दीक्षा गुरू के रूप में मिलता है।

इस प्रकार आचार्य सुधाकलश जी ने गच्छ परम्परा के कतिपय श्रेष्ट आचार्यों के उल्लेख के साथ ही अपने गुरूजनों के नामों का भी स्पष्ट दिग्दर्शन षष्ठम् अध्याय में श्लोक संख्या १४६ - १५१ पर किया हैं।[1] परन्तु उक्त गच्छ परम्परा का पुर्ण विवरण श्री चतुरविजय[2] जी द्वारा अपनी पुस्तक में भी मिलता है।

आचार्य सुधाकलश जी द्वारा रचित अन्य ग्रंथः-

आचार्य सुधाकलश जी स्वयं भी उत्तम कोटि के साहित्यकार थे। जिन्होंने 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य अनेकों ग्रंथों व कोशों में एकाक्षरनाममाला, एकादशपडिमा, एकादशीमाहात्म्यकथा एवं एकादशीव्रतकथानक की रचना की। जो ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट ऑफ बडौदा में सुरक्षित हैं।

ग्रन्थ-प्रतिपाद्य

'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रंथ संगीत के क्षेत्र में मील का पत्थर ही कहा जा सकता है जो कि मध्यकालीन भारत के पश्चिमी प्रान्तों में प्रचलित संगीत रूपी सागर में संगीतज्ञों को सराबोंर कर अमूल्य संगीत रत्नों से परिचित करता हैं इस ग्रंथ की महिमा का वर्णन आचार्य सुधाकलश जी ने अपने ग्रंथ के षष्ठम् अध्याय में निहित श्लोक संख्या १४६ - १४८ के अन्तर्गत स्वयं ही की है[3]।

आचार्य सुधाकलश कृत 'संगीतोनिषत्सारोद्धार' का उल्लेख दो नामों से प्राप्त होता है। संगीतोपनिषद्सार व संगीत सारोद्धार। जिसका विवरण आचार्य सुधाकलश जी ने स्वयं 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रन्थ के षष्ठम् अध्याय के अन्त में श्लोक संख्या १५१-१५२ पर की हैं। यथाः-

संगीतोपनिषत्सुसारमखिलं विज्ञानिसौख्याय यत्।। १५१।।
संगीतोपनिषद्ग्रन्थं खाष्टाग्निशशिवत्सरे।
ऋतुशून्ययुगेन्द्वब्दे तत्सारं चापि निर्ममे।। १५२।।[४]

आचार्य सुधाकलश जी द्वारा ज्ञानियों के सुख के लिए सम्पूर्ण 'संगीतोपनिषत्सार' की रचना की व 'संगीतोपनिषद्' ग्रन्थ की रचना शून्य, आठ, तीन, एक त्र १३८० सम्वत् (सन् १३२४) में तथा उसके सार की रचना छः, शून्य, चार, एक त्र १४०६ सम्वत् (सन् १३५०) में की।

पाण्डुलिपियों का विवरण :- आचार्य सुधाकलश कृत 'संगीतोनिषत्सारोद्धार' की मूल कृति का प्रथम संस्करण उमाकान्त प्रेमानन्द शाह द्वारा ओरियन्टल इन्स्ट्रीट्यूट बडौदा से सन् १९६१ में प्रकाशित किया गया। जो गायकवाड ओरियन्टल सीरिज न० १३३ में सुरक्षित है। जिसका सम्पादन/ महा प्रबंधक बी. जे. सन्देसारा (Sandesara) द्वारा किया गया है। उमाकान्त प्रेमानन्द शाह जी ने अपनी कृति में चार अलग-अलग पाण्डुलिपियों का प्रयोग कर उक्त ग्रंथ को पूर्ण स्वरूप दिया है, जिसे उन्होंने एच- मुनि श्री हंसविजय जी, के- मुनि श्री कान्ति विजय जी, पी- आगम प्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजय जी, एवं ओ. एच- ओरियन्टल इन्स्ट्रीट्यूट, बडौदा । इस प्रकार इन्हें H. K.P & O Manuscripts नामित किया गया है। उपर्युक्त जैनचार्यों के नामों के लिए प्रारम्भिक अक्षर का सांकेतिक चिन्हों के रूप में प्रयोग किया है। उमाकान्त प्रेमानन्द शाह द्वारा मुख्यतः चार पाण्डुलिपियों का प्रयोग किया गया हैं किन्तु गहन अध्ययन से इस ग्रंथ की छः निम्नलिखित स्थानों पर पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती है:-१ **ओरियन्टल इन्स्ट्रीट्यूट ऑफ बडौदा, २. भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद ३. श्री आत्माराम जी जैन ज्ञान मन्दिर, बडौदा**

१. प्रथम पाण्डुलिपि मुनि श्री कान्ति विजय जी **२.** दूसरी पाण्डुलिपि मुनि श्री हंसविजय जी के द्वारा संग्रहित है। ४. **एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी ऑफ बॉम्बे ५. अनुप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ६. सिटी पैलेस लाइब्रेरी, जयपुर।**

संगीतोपनिषत्सारोद्धार नाम का वैशिष्ट्य :-

यह ग्रंथ स्वयं में वैशिष्ट्य पूर्ण ग्रंथ है तथापि इस ग्रन्थ के वैशिष्ट्य पर यदि दृष्टिपात करें तो सर्वप्रथम 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रन्थ का नाम ही अपने आप में वैशिष्ट को प्रदर्शित करता है। इसमें तीन पदों का योग है:-**संगीत + उपनिषद् + सारोद्धार।** इन तीनों ही पदों के विभिन्न शब्दकोशों के अनुसार शाब्दिक अर्थ पर ध्यान केंद्रित करने पर निम्नवत् अर्थ प्राप्त होते हैं, जिसकी पूर्णता से ही इस ग्रंथ की महिमा परिलक्षित होती है:-

संगीत :- संगीत शब्द का पूरा अर्थ 'सम्यक् रूप से सुशोभित गान' होता हैं, अतः **"गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीत मुच्यते"**[६] **अर्थात्**-गीत, वाद्य तथा नृत्तं का समुच्यते रूप ही संगीत कहलाता है।

उपनिषद् :- शब्द उप और नि उपसर्ग पूर्वक 'सद्' घातु से क्विप् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है-समीप में बैठना अर्थात् गुरू के समीप में बैठकर ज्ञान प्राप्त करना । **पारिजात शब्दकोश के अनुसार - उपनिषद्** शब्द उप् नि, सद्, क्विप् प्रत्यय से मिलकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है- ब्रह्म विद्या की प्राप्ति हेतु गुरू के पास बैठना।[७]

सारोद्धार :- सारोद्धार शब्द दो शब्दों के योग से मिलकर बना हैं **सार, उद्धार** । जिसका शाब्दिक अर्थ निम्नवत् है:- **सार से तात्पर्य -** यथार्थ, असली, उत्तम, सच्चा, प्रधान, ठोस, न्याच्यः Real, Essential, Best, Most, Excellent, Predominant, Solid, Jirm, Just. तत्त्व, स्थिरांश, शरीर की उत्कृष्ट धातु, नवनीत, भलाई, स्थामन्, तात्त्विक ऊर्जा, ग्रंथ का सार, विषय।[८]

उद्धार से तात्पर्य -(उद्वह घत्र्) मुक्ति, बचाव,त्राण, छुटकारा, मोक्ष, धन पुनः प्राप्त होना, खीचंकर बाहर निकालना Salvation, Release, Elevating, Drawing Out.[9]

अतः **सारोद्धार** जीवन का वह परम लक्ष्य है, जिसमें आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार होना, परमात्मा में लीन हो जाना ,परमात्मा की प्राप्ति कर मोक्ष की प्राप्ति होना। यही यथार्थ उद्धार कहलाता है।

जिस प्रकार उपनिषद् जो कि समस्त वेदों का सार है, तथा जो पुनर्जन्म, कर्मफलवाद, आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग, चेतना व दर्शन का मूल माना जाता है। उसी प्रकार संगीतोपनिषत्सारोद्धार ग्रन्थ भी संगीत के गायन , वादन व नृत्य से सम्बन्धित समस्त बिन्दुओं को अपने में समाहित किये हुए है, तथा जिसमें नादानुसंधान, नादोत्पत्ति, दर्शन व संगीत के माध्यम से आध्यात्मिक चेतना आदि का रहस्योद्घाटन करता है।

'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' ग्रन्थ के अध्याय का विवरण[११] **:-** यह ग्रंथ छः अध्याय में विभक्त कर सम्पन्न हुआ है, जिनका विवरण निम्नवत् हैं:-

प्रथम अध्याय **गीत प्रकाशनाध्याय** में वाचनाचार्य सुधाकलश जी ने ग्रंथ के प्रतिपाद्य की प्रारम्भिक औपचारिकता का निर्वाह करते हुए मांगलिक श्लोक में जिन स्तुति, सारस्वती वदना, गुरूमहत्ता व अपने पूर्ववर्ती आचार्यों(पार्वती, कोहल,

दंतिल आदि) से मार्ग दर्शन लेते हुए प्रस्तुत ग्रथ का लेखन कार्य प्रारंभ किया है। तत्पश्चात् गीत के परिभाषा व महत्व को प्रतिपादित करते हुए गीत के अन्तर्गत देशी गीत, स्वरों की उत्पत्ति में देह प्रमुख, पिण्डोत्पत्ति, नादोंत्पत्ति व पाँच प्रकार के नादों के नाम मतंग मुनि के अनुसार ही दिये है। तत्पश्चात् गीत के प्रकारों में अनिबद्ध व निबद्ध को स्पष्ट करते हुए निबद्ध के अन्तर्गत प्रबन्ध, रूपक व वस्तु की परिभाषा लक्षण व प्रकार बताये है। इसी के साथ खेद व्यक्त करते हुए कहा- प्रबन्ध-बन्धक सर्जक आज संसार में बहुत कम हैं और उनके गाने वाले विरले ही हैं। इस कारण इनकी विस्तार से चर्चा नहीं की गयी है। प्रबन्ध के पश्चात् आपने रूपक को स्पष्ट किया है। जिसमें चार धातुओं में उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव तथा आभोग व छः अगों में स्वर, राग, ताल, तेन्ना, बिरूद तथा पाट और पद नाम प्राप्त होते है। तत्पश्चात् ग्रंथकार द्वारा श्रुति के बढ़ते क्रमानुसार प्रबन्ध की पाँच जातियों का भी उल्लेख किया है।

द्वितीय अध्याय **प्रस्तारादि सप्ताश्रय ताल प्रकाशनाध्याय** में वाचनाचार्य सुधाकलश जी ने संगीत के विभिन्न तत्वों से धन्य इस पृथ्वी के सभी देवी-देवताओं की स्तुति से आरंभिक करते हुए संगीत की निष्पत्ति भगवान शिव द्वारा बताई तथा गीत, वाद्य तथा नृत्य में ताल की महत्ता को स्वीकार किया। काल का मानक 'ताल कहा जाता है। अतः ग्रंथकार द्वारा तालों, उनकी संख्या तथा उनके अंग व प्रत्येक का कालमान आदि का वर्णन किया हैं, जिसमें पाँच द्रुत (बिन्दु, द्रुत, व्योम, व्यंजन और अर्द्धयांत्रिक), पाँच लघु (व्यापक, सरल, ह्रस्व, लघु एवं मात्रिक), पाँच गुरू (गुरू, दीर्घ, वक्र, कला तथा द्विमात्रिक), पाँच प्लुत (त्रिमात्रिक, प्लुत, दीप्त, व्यंग तथा सामोद्भव) तथा अन्य 'अर्धद्रुत' व 'पंचभद्र' आदि नाम बताये हैं। साथ ही अंगों के देवता, ग्रह के तीन प्रकार और ताल के पाँच प्रकार- प्रस्तार, संख्या, नष्ट, उद्दिष्ट और कलित इस प्रकार से बताते हैं, आचार्य सुधाकलश जी ने विभिन्न मात्राओं से निर्मित ७३ तालों का स्वरूप व बोलों का विवेचन एक मात्रिक से षष्ठि मात्रिक ताल के रूप में किया गया है। जो अन्य किसी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है।

तृतीय अध्याय **गण स्वर रागादि प्रकाशनाध्याय** में वाचनाचार्य सुधाकलश जी ने प्रारम्भ में पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश) से निर्मित नरदेह की रचना, संगीत में प्रयुक्त गण को मानव की शुभता, गणों के विभिन्न रूप, नाम, उत्पत्ति का क्रम, उनके परिवर्तित स्वरूप, पद्य, दण्डक, नादों के भेद में राग, रागांग, भाषांग, क्रियांग, तथा उपांग के भेद से सम्पूर्णनाद के पाँच प्रकार वर्णित किये है तथा स्वर परिचय, स्वर के भेद (षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, और निषाद) ग्राम, मूर्च्छना, तान, श्रुतियाँ, आलप्ति, राग-रागिनी वर्गीकरण, अलंकार इत्यादि बिन्दुओं व स्वरों सहित रागों तथा भाषा की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला हैं। प्रस्तुत अध्याय में रागों के चार वर्ग - देश्य (क्षेत्रीय), शुद्ध, सालिग और छाइला (उपराग) दिये गये है इसी के साथ ओडव (पंचस्वरीय), षाडव (षड् स्वरीय) पूर्ण, अपूर्ण नामक अन्य चार भेद भी बताये गये है। ग्रंथकार ने रागों के लिंग-भेद का मात्र उल्लेख किया गया है। अलंकारों के विश्लेषण के क्रम में शिवमत में १२ और गौरा मत में १८ अलंकारों का वर्णन किया गया हैं। इन अलंकारों की स्वरलिपि सहित तालिका के बाद स्वर करण एवं पाट करण आदि के भी लक्षण विस्तार पूर्वक दिये गये है।

चौथा अध्याय **"चतुर्विध वाद्य प्रकाशनाध्याय"** में वाचनाचार्य सुधाकलश जी ने अध्याय के आरम्भ में जितेन्द्रिय 'जिन' को प्रसन्नता से करते हुए चार प्रकार के वाद्यों का विस्तृत वर्णन किया है। लेखक के अनुसार 'तत वाद्य' के अन्तर्गत वीणा आदि वाद्य, 'घन' वर्ग में मंजीरा या झाँझ, सुषिर वाद्यों में वंशी और 'आनद्ध' में मुरज आदि वाद्य आते हैं। इनके अतिरिक्त वाद्य वर्गीकरण से सम्बन्धित तत्कालीन समय में प्रचलित अन्य विद्वानों के मतों को भी आपने इस अध्याय में समाहित किया है। तत्पश्चात् वाद्यों के पाँच प्रकार की ध्वनि में (नादों) के आधार पर भी वर्गीकृत किया है। जो इस प्रकार हैः- आहत (आघात से उत्पन्न) अनाहत (बिना आघात के उत्पन्न) डण्डी (लकड़ी) के आघात से उत्पन्न, हाथ के आघात से उत्पन्न और वायु के आघात से उत्पन्न। प्रस्तुत अध्याय में लेखक ने 'तत', 'घन', 'सुषिर' एवं 'आनद्ध' वर्गों में निर्धारित वाद्यों का विस्तृत विवरण दिया है। जिसका सक्षिप्त वर्णन निम्नवत् हैः-

'तत् वाद्य' - पिनाकी, किन्नरी, अनालम्बी, कच्छपी, वृहती, महती, कलावती, प्रभावती, घोषवती, विपन्ची, कण्ठ कूणिका, वल्लकी, ब्रह्मवीणा आदि वीणाओं के अनेक प्रकारों तथा **'पट्टाउज'** वाद्य को भी वीणा की ही भाँति माना गया है। **'घन वाद्यों'** - करताल, मंजीरा, झाँझ, कांस्य व झल्लरी आदि वाद्यों का ढाँचेगत वर्णन प्राप्त होता हैं। **'सुषिर वाद्यों'**- में वंशी, शंख, भुंगला, भेरी, श्रृंग, बंसुली और मुख से बजाए जाने वाले अन्य अनेक वाद्यों को उल्लेख किया गया हैं। **'आनद्ध वाद्यों'** - में मुरज, मृदंग, ढक्का, निस्साण, त्रिवली तथा पटह आदि भी सम्मिलित है, किन्तु आपने मुरज वाद्य की उत्पत्ति, पाटाक्षर, वादन विधि का विस्तृत विवेचन किया है। **अन्य आनद्ध वाद्यों में** - 'ढक्का, त्रिवली, आउज, धाडजय, खाउज, और पट्टाउज ढोल्ल, तब्ल, डफा, टामकी और डडंडि, डमरुक, बुक्का, दुद्दडी

(दुद्भी), कुण्डली तथा घट का उल्लेख किया गया हैं। ये सभी चर्म से मढ़े हुए आनद्ध प्रकार के वाद्य हैं।

पंचम अध्याय **नृंयांगोपांगप्रत्यंग प्रकाशनाध्याय** में वाचनाचार्य सुधाकलश जी ने नृत्य का आयोजन व उसकी उत्पत्ति , नृत, नृत्य, नाट्य और नाटक का उल्लेख करते हुए लास्य और ताण्डव नृत्य की व्याख्या व पृथ्वी पर नृत्य का प्रचार-प्रसार, नृत्य के अंग, उपांग और प्रत्यंग ये तीन प्रकार व तीनों प्रकारों के छः-छः भेंद में शीर्ष के भेद क्रमशः - शीर्ष (सिर), नेत्र, दृष्टि, तारा (पुतली), भोंहें, नाक, ओठ, गाल, ठोड़ी और मुख का वर्ण आदि का वर्णन किया है। जिसमें सिर के तेरह लक्षण, 'दृष्टि' (नेत्र) के छत्तीस प्रकार की भाव भंगिमाऐं, दर्शन (देखना) के आठ प्रकार, तारा की नौ क्रियायें व लक्षण, पलकों की नौ क्रियाएँ एवं लक्षण, भोंहों के सात प्रकार व लक्षण, नासिका की छह स्थितियाँ, 'अधरों' की पाँच क्रियाएँ, कपोल की छः प्रकार की गतियाँ व स्थितियाँ, चिबुक'/'ठोड़ी' की सात प्रकार गतियाँ तथा मुख के चार प्रकारों लक्षणों का उल्लेख किया गया है। प्रत्यंग में ग्रीवा, कन्धों तथा कण्ठ के लक्षण को स्पष्ट किया गया है। **द्वितीय अंग हस्त** (हाथ) के अर्न्तगत उनके नाम, लक्षण, हाथों की गतियाँ, हाथों की चाल या स्थितियाँ, क्रियाएँ, भुजाओं की स्थितियाँ व २४ असंयुक्त, १३ संयुक्त व २७ अन्य हस्त मुद्राओं का भी वर्णन दिया गया है। अन्य चार मुख्य अगों व उसके प्रत्यंगों के अर्न्तगत हृदय, (वक्ष), उदर (पेट) पार्श्व (बगलें) कटि (कमर) उरु युगं (दोनों कूल्हे) जंघा युगं (दोनों जांघें) पादकर्म (पैरों की स्थितियाँ या मुद्राएँ। स्थानक (स्थिर मुद्राएँ) तथा पैरों की अन्य स्थितियों के वर्णन के साथ ही नृत्यकला के ज्ञाताओं की प्रशंसा की गई है।

छठा अध्याय **नृत्य पद्धति प्रकाशनाध्याय** में गंथकार के विचारानुसार 'करण' ही 'लास्य' जैसे नृत्यों के आधार हैं। पूर्ववर्ती ऋषियों ने इनकी (करण) संख्या एक सौ आठ बताई है। करण के प्रकारों की क्रिया पद्धतियों में हाथ तथा पैरों की स्थिति का वर्णन किया है जिसमें तलपुष्पपुट करण, वलितोरू करण, अपविद्ध करण, समनख करण, इत्यादि का विस्तार पूर्वक विवरण दिया गया है। करण के पश्चात् अंगहार, भ्रमरी और चारी को स्पष्ट करते हुए इनके बत्तीस-बत्तीस प्रकारों का भी वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् आपने नृत्य विद्या की तत्कालीन स्थितियों, प्रचलित पारिभाषिका शब्दावली, नृत्य के अभ्यास की पद्धति, सभापति के लक्षण, सभासदों के लक्षण, सभा के लक्षण, गीतकार के लक्षण, संगीत प्रस्तोताओं के प्रकार तथा ग्रन्थ की प्रशंसा इत्यादि का वर्णन किया है।

निर्ष्कष रूप से कहा सकते है कि संगीत के क्षेत्र में अनेक उत्कृष्ट कोटि के ग्रन्थों में नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी, दत्तिलम्, मानसोल्लास, संगीत मकरन्द, संगीत चूडामणि, संगीत रत्नाकर आदि ग्रन्थ संगीत से सम्बन्धित रहें, किन्तु **वाचनाचार्य सुधा कलश** कृत '**संगीतोपनिषत्सारोद्धार**' जैन ग्रंथ में उच्च कोटि के संगीत ग्रंथों की श्रंखला में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो तत्कालीन समय के संगीत तत्वों व आध्यात्मिक चेतना को आपस में समाहित किये हुए है। यह ग्रन्थ संगीत के क्षेत्र में अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो कि उपनिषद् के भाव लेते हुए तत्कालीन पद्धतियों, विधियों (मार्गी व देशी संगीत), पिण्डोत्पत्ति, नाद चेतना, गीतो के प्रकार, मूर्च्छनाए, विभिन्न मात्रिक तालें, उनमें निर्मित बोल समूह (जिन्हें वर्तमान में ठेका कह सकते है।/जिन्हें वर्तमान ठेके की परिकल्पना/प्रारंम्भिक स्वरूप कह सकते है।) वाद्यों का नवीन दृष्टिकोण, नृत्य के सम्पूर्ण पक्षों का विशद् विवेचन धर्म, दर्शन ,उपनिषद् व आध्यात्मिक चेतना आदि को अपने में समाहित करते हुए एक अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है।

यद्यपि यह ग्रन्थ स्वयं में वैशिष्ट्य पूर्ण ग्रन्थ है जिसके वैशिष्ट्यों की किचिंत जानकारी अनेक पुस्तकों में वर्णित है, तथापि शोधकर्त्री के विचारानुसार इस ग्रन्थ के वैशिष्ट्यों के विषय में कम ही जानकारी उपलब्ध है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

१. शाह, उमा कान्त प्रेमानन्द, सुधाकलश कृत संगीतोपनिषत्सारोद्धार, श्लोक सं० १४६-१५१ पृ० सं० १४४
२. शाह, उमा कान्त प्रेमानन्द, सुधाकलश कृत संगीतोपनिषत्सारोद्धार, भुमिका पृ० सं० -८
३. शाह, उमा कान्त प्रेमानन्द, सुधाकलश कृत संगीतोपनिषत्सारोद्धार, श्लोक सं० १४८ पृ० सं० १४३
४. शाह, उमा कान्त प्रेमानन्द, सुधाकलश कृत संगीतोपनिषत्सारोद्धार, श्लोक सं० १५२ पृ० सं० १४४
५. 'काव्या' डॉ० लावण्य कीर्ति सिंह, भारतीय संगीत ग्रंथ, पृ० सं०- १६१
६. चौधरी, डॉ० सुभ्रदा, शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर, प्रथम अध्याय, श्लोक संख्या-२१ पृ० सं०१२
७. शर्मा, डॉ० ईश्वर चन्द्र, पारिजात कोश, पृ० सं० -१७४
८. चौधरी, बाबा रामदेव व आदित्य कुमार मिश्र, संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश, पृ० सं० -३८४
९. चौधरी, बाबा रामदेव व आदित्य कुमार मिश्र, संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश, पृ० सं० -२१
१०. शाह, उमा कान्त प्रेमानन्द, सुधाकलश कृत संगीतोपनिषत्सारोद्धार, श्लोक सं० १-१४७, पृ० सं० १-१४३, ओरियन्टल इन्स्ट्रीट्यूट, बडौदा, १९६१